Vol. 11, Issue 01, January: 2023
ISSN(P) 2347-5404 ISSN(O)2320 771X

लीलाधर जगूड़ी के काव्य में लोकगीतों की अभिव्यक्ति

डॉ. मोनू सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी,

चै॰ चरण सिंह राजकीय महाविद्यालय,

छपरौली, बागपत

लीलाधर जगूड़ी समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनके अद्यतन 13 काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कविता समकालीन स्थितियों-परिस्थितियों का बहुत प्रामाणिक विश्लेषण करती है। लीलाधर जगूड़ी की कविता में जितना राजनैतिक प्रखरता विद्यमान है, उतनी ही सुदृढ़ लोक की उपस्थिति भी है। जगूड़ी की कविता लोकगीत, लोकनृत्य, लोककलाओं एवं पर्वतीय अंचल की बहुत प्रामाणित अभिव्यक्ति करती है। इस शोध पत्र में हम लीलाधर जगूड़ी की कविता में लोकगीतों के विविध सन्दर्भों का विश्लेषण करेंगे। लोकगीतों का विश्लेषण करने से पूर्व हमें लोकगीतों का अर्थ, परिभाषा एवं इसके स्वरूप को समझना श्रेयस्कर होगा।

'लोकगीत' अंग्रेजी के 'फोक साँग' का पर्याय है। हिन्दी साहित्य कोश में इसके भिन्न-भिन्न अर्थ दिए गए हैं। लोक में प्रचलित गीत, लोक निर्मित गीत, लोक विषयक गीत, इन तीनों अर्थों में ही लोकगीत का अर्थ लोक में रचे-बसे प्रचलित गीतों से लिया जाता है। इन गीतों का रचयिता कोई व्यक्ति विशेष न होकर समूचा लोक ही होता है। लोकगीत लोक में बसे जन सामान्य की सहज मनःस्थिति के अकृत्रिम चित्र हैं। डॉ. सरनाम सिंह ने लोकगीत की परिभाषा देते हुए लिखा है- ''लोकगीत किसी व्यक्ति विशेष की निधि नहीं होता है। इसकी सृष्टि में लोक-रूचि, लोक-भावना, लोक रीति, लोक-नीति का भोग रहता है। इसके निर्माण के पीछे लोक-जीवन, लोक-समाज, लोक संस्कृति का पूर्ण चित्रण रहता है।''[1]

वरिष्ठ साहित्यकार देवेन्द्र सत्यार्थी लोकगीतों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- ''लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।''

कविता कौमुदी में लोकगीत की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है- ''लोक समाज लोकगीतों को अपनी धुन में गाता है। लोकगीत प्रकृति के सच्चे उद्गार हैं, इनमें अलंकार नहीं केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। ग्रामीण समाज के स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर जिन गीतों की रचना होती है, उन्हें लोकगीत कहते हैं।''

लोकगीतों के सम्बन्ध में डॉ. सत्या गुप्ता की परिभाषा भी महत्वपूर्ण है। उनकी परिभाषा लोकगीतों पर व्यापक रूप से प्रकाश डालती है- ''इन गीतों में न कला है, न भाषा, न सौष्ठव, न गीतकारों ने इनकी रचना बन्द कमरों में की है। ये गीत तपते सूर्य के नीचे खेतों में काम करते हुए लोक मानस ने गाए हैं, चूल्हें पर कसार भूनती हुई, दीपक जलाती हुई नारी ने गुनगुनाए हैं। उस

Vol. 11, Issue 01, January: 2023
ISSN(P) 2347-5404 ISSN(O)2320 771X

समय अन्तःकरण को जो स्पर्श कर गया, वहीं भाव बोलचाल की भाषा में गीत बनकर फूट पड़ा।''

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि लोकगीतों का केन्द्र लोक होता है। वे किसी एक व्यक्ति या वर्ग की सम्पत्ति नहीं, भले ही कोई वर्ग उनका विशेषज्ञ हो। लोकगीत माधुर्य, सरस और सहज रूप में लोक भावना से ओत-प्रोत होते हैं। लोकगीत कृत्रिमता से सर्वथा दूर होते हैं। लोकगीत में लोक स्पन्दित होता है। लीलाधर जगूड़ी के काव्य में लोकगीत पारम्परिक रूप में विद्यमान नहीं है, अपितु वे लोकगीत के पीछे छिपे उन कारकों की गहन पड़ताल करते हैं, जिनके कारण लोकगीत का निर्माण हुआ। 'जगूड़ी' का वैचारिक और सजग मन उन्हें हर स्थिति में चिन्तन को बाध्य करता है। लोकगीत लोक के पिछड़ेपन का भी द्योतक हैं। 'जगूड़ी' की अनुसंधान वृत्ति लोकगीतों के माध्यम से समाज के विरोधाभासी विकास को भी चिन्तन के दायरे में समेटती है। 'लोकगीत' नामक कविता में कवि के इस मन्तव्य को भली-भांति समझा जा सकता है-

''**मगर आज जहाँ-जहाँ लोकगीत होगा वहाँ-वहाँ/धीमा और मंद और सीमित जीवन होगा/भले ही वह सुखी और सुरक्षित क्यों न लगता हो**

आदतें बदल गयी हैं सिर्फ यादें रह गयी है जिसकी/कुएँ पर झुकी हुई एक स्त्री बैलगाड़ी की रूँ-चूँ और पाताल लोक से आता हुआ/एक बाल्टी पानी

प्यासे दुःख जिसकी प्रतीक्षा में है/इस अनोखे जड़ चित्र को निहारने में अब रत्ती-भर रूचि नहीं है/हिलती हुई लालटेन के बावजूद घसियारी स्त्री के सिर पर बोझ और पेट में बच्चे के/बावजूद।''

लीलाधर जगूड़ी का मानना है कि जहाँ-जहाँ लोकगीत होगा वहाँ-वहाँ जीवन धीमा और मन्द होगा। 'जगूड़ी' प्रत्येक स्थिति को उलट-पलट कर देखते हैं। उनकी अनुसंधान की प्रवृत्ति उन्हें ऊपर से दिख रही स्थितियों के गहवर में उतरकर उसे कई कोणों से विश्लेषित करती है। इस कविता पर प्रो॰ रेवतीरमण की टिप्पणी बड़ी प्रासंगिक है- ''जगूड़ी के पास वैज्ञानिक अनुसंधान-वृत्ति प्रबल है इसलिए उनकी सभ्यता-समीक्षा आदिम की वापसी का इरादा नहीं रखती। एक सभ्यताक्रान्त समाज में लोकगीत का अभाव अथवा आधुनिकीकरण समस्या खड़ी करते हैं। जगूड़ी की मान्यता है कि लोकगीतों की उपस्थिति में जीवन को पिछड़े हुए का उदाहरण नहीं होना चाहिए, लेकिन दुर्भाग्य से वस्तुस्थिति यही है। जगूड़ी लिखते हैं- जहाँ-जहाँ लोकगीत होगा, वहाँ-वहाँ जीवन धीमा, मन्द और सीमित होगा।''

'जगूड़ी' लोकगीत के बनने के पीछे लोक के पिछड़ेपन को मानते हैं। सम्भवतः हिन्दी कविता में इस तरह का विमर्श स्वयं में अनूठा और अद्वितीय है। 'जगूड़ी' के यहाँ लोकगीतों के कई कोण हैं। वे लोकगीतों के बाह्य स्वरूप और उसके आन्तरिक समाजशास्त्र की गहरी शिनाख्त करते हैं। उनकी लोकगीत के सम्बन्ध में व्यक्त संवेदना, जीवन मूल्य, सहजता, कला की साधना और समर्पण आमजन की चिन्ता से सम्बद्ध है। जगूड़ी वैश्विक संस्कृति के फलते-फूलते संसार के सम्मुख लोकगीतों को बचाने की पहल भी करते हैं-

Vol. 11, Issue 01, January: 2023
ISSN(P) 2347-5404 ISSN(O)2320 771X

''इस तरह हमने अपने लोकगीत खोये, प्रायोजित गीतों के भरोसे

बने-बनाये संवादों के भरोसे खोई अनकही

बने-बनाये संगीत के भरोसे खोये लय-ताल।'' [2]

आधुनिक चकाचैंध और पश्चिमी संस्कृति के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति के कारण लोकगीत अपना दम तोड़ रहे हैं। प्रायोजित गीतों और संवादों के भरोसे हमने अपने नैसर्गिक जीवन के सुर, लय, ताल और सौन्दर्य को खो दिया। बाजार ने लोकगीतों को स्त्री देह की चाशनी में डूबोकर सैंधमारी कर दी है। यह संकेत स्पष्ट ही नहीं है अपितु बहुत ही संश्लिष्ट है। परिवर्तन तो प्रकृति का शाश्वत नियम है, किन्तु यदि वह परिवर्तन

सकारात्मकता लिए हुए केवल नए के व्यामोह में पुराने को तिरस्कृत करना उचित नहीं है। गीत, संगीत का संबंध हमारी आत्मा से बताया गया है, जो हमारे सुख-दुःख, राग-विराग की सहज एवं स्वतः स्फूर्त भावनाओं को व्यक्त करते हैं किन्तु बाजार के दबाव के चलते उन स्वतस्फूर्त भावनाओं को अवरूद्ध कर रेडिमेट गीत संगीत परोस देना उचित नहीं है। लोकगीत लोक की सहज एवं मौलिक अभिव्यक्ति के द्योतक होते हैं किन्तु इस मौलिकता की साजिश के तहत खत्म किया जा रहा है, जो बहुत ही घातक है। हजारों वर्षों की साधना से निसृतः हमारा शास्त्रीय संगीत उनकी लोकधुनें विभिन्न राग-रागनियों में निबद्ध हमारे गीतों की निर्मम हत्या की जा रही है। गीत और संगीत मात्र शब्द या मनोरंजन का साधन नहीं है, अपितु वे हमारी परंपरा, सभ्यता, संस्कृति एवं जीवन मूल्यों का संचित सार भी होते हैं। किसी भी समाज के गीत, संगीत को खत्म करना उन मान्यताओं जो किसी भी समाज का आधार होते है आस्थाओं एवं मूल्यों को भी नष्ट करना है जो किसी भी समाज का आधार होते हैं, यह बहुत ही घातक है। जगूड़ी के लोकगीतों में हमें यही चिंता देखने को मिलती है। वर्तमान समय में हम इस परिदृश्य को बखूबी देख रहे हैं। हनी सिंह के गीतों मसलन ''चार बोतल बोदका/काम मेरा रोजका/ना मुझको कोई रोकता/न मुझको कोई टोकता /तमन्चे पे डिसको'' आदि पर युवा पीढ़ी कैसे अपने समय के जरूरी सरोकारों, मुद्दों और समस्याओं से बेखबर मदमस्त होकर नृत्य कर रही है। क्या यह अपसंस्कृति का खुला और नंगा नाच नहीं है। पब्लिक स्कूलों में पढ़ने वाली तथाकथित संभ्रान्त समाज की यह पीढ़ी किस गह्वर में अपना दिशाबोध तलाश रही है। इन गीतों के दृश्य किसी भी सभ्य समाज के लिए घातक है। ये गीत हमारी युवा पीढ़ी को नशा, लूट, भोग, कुत्सित मनोवृत्ति उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं। अमरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने जनसत्ता में प्रकाशित इस लेख में लोकगीतों पर अपनी चिन्ता प्रकट की है- ''फिल्मों में 'फोक' के तड़के ने लोक की भ्रष्ट व्याख्या की। इससे इंकार नहीं कि लोक में एक खुलापन होता है पर उसके खुलेपन और बमबैया के खुलेपन में बड़ा अन्तर है। लोक का खुलापन सहज होता है। फिल्मी खुलेपन में बाजारूपन होता है। हाल के दो दशकों में लोक, लोक-गीतों, लोक-धुनों को बाजारू मकसद से फिल्मों में खूब दुहा गया है, इससे लोक या लोकगीतों की एकांगी और भ्रामक छवि सामने आती है। 'आइटम सांग्स' का फिल्मी बाजार नया है। पहले ऐसा नहीं था। लोक-धुनों बह पर लोकगीत लिखे भी जाते थे और

Vol. 11, Issue 01, January: 2023
ISSN(P) 2347-5404 ISSN(O)2320 771X

संगीतबद्ध भी किये जाते थे। कजरी, चैती, दादरा, आदि फिल्मों में निभाए जाते थे। 1963 में बिदेसिया की कजरी में गीता देखी जा सकती हैं। जिसमें गीतादत्त और कौमुदी मजूमदार का स्वर है-

'नीक सैयां बिना भवनवा नाही लागै सखियाँ।'

इसी तरह 'मन्ना डे' के कण्ठ से 'नैहर छुटल जाए' की कजरी 'ओ राजा रिमझिम बरसेला पनिया' बेहतरीन लोकगीत है। पहले नौशाद, जयदेव, सलिल चैधरी, एस०डी० वर्मन, औपी नैय्यर, कल्याणजी आनन्द जी आदि संगीतबद्धता में प्रचलित लोकगीतों की धुनों को रखते थे, तो लोकगीत भी पुनर्नवा होते थे। अब तो कोई महसूस भी नहीं कर सकेगा कि 'कजरारे-कजरारे' कानपुर के किन्नरों के लोकगीतों का एक मुखड़ा है। पहले लोकगीतों और लोक-धुनों से फिल्मी गीत प्रभावित होते थे। अब प्रक्रिया उलट गयी है। अब फिल्मी गानों की नकल पर लोकगीत लिखे और गाये जाते हैं। इसे ज्यादा मुखर और वे दुःखद रूप से वर्तमान भक्ति गीतों में देखा जा सकता है कि पे किस तरह से किसी 'फैमस' फिल्मी गाने की घटिया नकल साबित होते हैं। यह ऐसा प्रभाव है जिसने लोकगीतों की बुनावट-बनावट को बुरी तरह क्षतिग्रस्त किया है। लोकगीतों की मौलिकता नष्ट की है।[3]

वरिष्ठ चिन्तक प्रेम सिंह अपनी पुस्तक 'उदारीकरण की तानाशाही में' इस स्थिति पर स्पष्ट टिप्पणी करते हुए लिखते हैं- ''पुराने फिल्मी गानों और लोकगीतों को स्त्री-देह की चाशनी में लपेटकर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति आगे और जोर पकड़ेगी। आशा भौंसले जैसे सुगम संगीत की और शुभा मुद्गल जैसी शास्त्रीय संगीत की गायिकाएँ भी इस मैदान में उतर आई हैं। कई बार सुनने में आता है कि सरकार रिमेक्स गानों और लोकगीतों की अश्लील प्रस्तुतियों पर कानूनी लगाम लगाएगी, लेकिन पहले उसे पूँजीवादी, उपभोगतावादी विचारधारा के वाहक और इस परिघटना के स्रोत वैश्वीकरण पर लगाम लगानी होगी। प्रेम की पीड़ा, पवित्रता, औदात्य भावनाओं और अनुभूतियों से जुड़े फिल्मी गीतों को बाजार के रास्ते उतारा जा रहा है।'' 'जगूड़ी' लोकगीतों पर मंडराये इस संकट पर चिन्तातुर हैं-

''**बैल के हलवाहे के, घसयारे के लौहार के सोनार के**

पनिहारिन के गीत की जगह अभी तक नहीं आया है

ट्रैक्टर का ड्राईवर का पायलट का चारा मशीन और फैक्ट्री का गीत

न जौहरी बाजार का न शेयर मार्केट का न नल जल का गीत . . .

बच्चा पैदा हो सकता है पर नहीं पैदा हो सकता एक लोकगीत।''

'जगूड़ी' बैल की ट्रैक्टर से, हलवाहे की ड्राईवर और पायलट से, घसयारे की चारा मशीन से और लोहार, सोनार की फैक्ट्री से तुलना करते हैं। उनकी कविता में तुलना का यह क्रम निर्बाध रूप से चलता रहता है, जिसके कारण स्थितियों के विद्रूप अपनी समग्रता में

Vol. 11, Issue 01, January: 2023
ISSN(P) 2347-5404 ISSN(O)2320 771X

चित्रित होते हैं। 'जगूड़ी' की यह कविता इस प्रश्न को भी उठाती है कि भारत की लोक संस्कृति को खत्म करने की क्या कोई सोची-समझी साजिश की जा रही है। वे एक लोकगीत को बच्चा पैदा होने के बरक्स महत्वपूर्ण मानते हैं। जगूड़ी यह प्रश्न करते हैं कि हमने आधुनिक सभ्यता संस्कृति और औद्योगीकरण को तो अपना लिया किन्तु क्या हम इस आधुनिक संस्कृति के अनुरूप लोकगीतों का भी निर्माण कर सके। जगूड़ी लोकगीत की निर्माण प्रक्रिया को सरल कार्य नहीं मानते अर्थात् उनका संकेत स्पष्ट है कि लोकगीत के मसले को अगम्भीरता से नहीं लिया जा सकता क्योंकि लोकगीत मात्र कोरा शब्द नहीं अपितु किसी भी समाज अथवा समुदाय के अभिन्नतम और जरूरी दस्तावेज हैं, जिनको संरक्षित और संवर्धित करना हमारी जिम्मेदारी होनी चाहिए वर्तमान समय में लोकनायकों की दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। भारत के दूर-दराज ग्रामीण इलाकों में आज भी लोक-गायक बिना किसी सरकारी संस्था के गरीबी का अनुदान के गरीबी का दंश झेलने को अभिशप्त है। जगूड़ी की कविता की अंतिम पंक्ति बच्चा पैदा हो सकता है पर नहीं पैदा हो सकता एक लोकगीत।श् लोकगीत के महत्व को उजागर करती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि कोई देवेन्द्र सत्यार्थी जैसा साधक लोकगीतों के संरक्षण का बीड़ा उठाये। ''सत्यार्थी जी ने 20 सालों तक लगातार बिने थके, रुके देश के कई अंचलों में घूम-घूम कर गाँव बीहड़ों में जा-जा कर लोक साहित्य के संग्रह का काम किया, वह कितना कठिन और जोखिम उठाने वाला रहा होगा। उन्होंने भारतीय भाषाओं के लगभग तीन लाख लोक गीत इकट्ठे किए। भीतर का उत्साह ही उनकी प्रेरणा थी। न कोई आर्थिक मदद न कोई सरकारी सहयोग उनके लोक साहित्य के प्रति समर्पित कार्य को सांस्कृतिक मुक्ति की मुहिम से भी जोड़कर देखा जा सकता है। राजनीतिक आजादी तो 15 अगस्त 1947 को मिल ही गयी, लेकिन क्या सांस्कृतिक रूप से भी हम औपनिवेशिक प्रभाव से भी मुक्त हुए। यह सवाल हमारे लिए आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। आगे भी बना रहेगा। अपने देश की लोकधारा में गहरे पैठना और उसे जन-जन की चेतना से जोड़ना औपनिवेशिक प्रभावों का सहज प्रतिरोध है। देवेन्द्र सत्यार्थी जैसे लोक संग्रही ने इस बात को बखूबी समझा।''[4]

लोकगीत जगूड़ी की एक उत्कृष्ट कविता है, जो अपने गर्भ में लोकगीत के बहाने सभ्यता के तमाम आरोह-अवरोह को समाहित किए हुए है। इस सन्दर्भ में रेवतीरमण की टिप्पणी उल्लेखनीय है- ''लोकगीत जगूड़ी की एक श्रेष्ठ कविता है विचार विह्वल। इसमें कवि सभ्यता के जटिल विन्यास का संश्लिष्ट प्रतिपक्ष रचता है।'' 'जगूड़ी' का मानना है कि लोकगीत को बचाए रखने का एक मात्र तरीका पुरानी दुनियाँ के ढर्रे (भूख, गरीबी, बेरोजगारी) आदि नहीं हो सकता। वे पारम्परिक ढंग और बने-बनाए प्रतिमानों के बरक्स नई दृष्टि से देखते हैं-

''**पर लोकगीत बनाए रखने का तरीका नहीं है**

पुरानी दुनियाँ का ढर्रा बचाए रखना

Vol. 11, Issue 01, January: 2023
ISSN(P) 2347-5404 ISSN(O)2320 771X

नई दुनिया में यदि जरूरत है पुरानी दुनिया के सिर्फ लोकगीतों की।'[5]

'जगूड़ी' अपनी कविताओं में प्रतिपक्षी स्थितियों के चित्र रचते हैं। उनकी कविताएँ हिन्दी साहित्य में अपना ऐतिहासिक महत्व रखती हैं।

लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में लोकगीतों के कई कोण हमें देखने को मिलते हैं। वे लोकगीतों को लेकर मात्र गदल अश्रु भावुकता नहीं दिखाते अपितु वे लोकगीतों के माध्यम से भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं विकास के मानदण्डों की गहरी शिनाख्त करते हैं। उनके लोकगीत हमें आधुनिक सभ्यता के मानकों की पुनपर्रीक्षा करने के लिए बाध्य करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. सरनाम सिंह- साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृ°सं° 18
2. लीलाधर जगूड़ी- भय भी शक्ति देता है, पृ°सं° 115
3. अमरेन्द्रनाथ त्रिपाठी- बिसुरते लोकगीत, जनसत्ता 15 मई 2016
4. अमरेन्द्रनाथ त्रिपाठी- जनचेतना की अभिव्यक्ति, जनसत्ता 10 मई 2016
5. लीलाधर जगूड़ी- भय भी शक्ति देता है, पृ°सं° 116